संचालक
भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

ज्ञानोदय कार्यालय
सहारनपुर : उत्तरप्रदेश

प्रबन्ध-सम्पादक
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

चित्रकार
केशव सदाशिव बापट

व्यवस्था और प्रसार
हरिश्चन्द्र 'पुष्प'
बालमुकुन्द 'अनुरागी'

वार्षिक मूल्य आठ रुपये
विदेशों के लिये ग्यारह रुपये
एक प्रति बारह आने

वसुधैव कुटुम्बकम्

ज्ञानोदय

सरस सजीव चित्रमय मासिक

वर्ष ५ { सहारनपुर, दिसम्बर १९५३ } अंक ६

सम्बोधन!

"बस इतनी-सी बात भी आपकी समझ नहीं आई? यह गल्ले का भाव नहीं है—ये आध्यात्मिक विषय ज़रा बारीक होते हैं लाला जी।"



प्रश्न का समाधान करने के स्थान पर सभा को हँसाने का प्रयत्न करते हुए स्वामी जी ने अपने श्री-मुख से फर्माया और प्रवचन की प्रगति पर बिना प्रतिबन्ध लगाए आगे बढ़ चले।

खिसियाना-सा मैं घर लौटा। मेरे छः साल के पुत्र उम्मी ने अपनी सवालों की कापी मेरे सामने बढ़ा दी। पहले हल पर दृष्टि पड़ते ही मुझे उबाल आगया।

"अबे सुअर के बच्चे! पचीस बार तुझे बताया कि छः पंजे तीस होते हैं और तू जब लिखता है बत्तीस ही लिखता है। जा, चला जा यहाँ से, नहीं तो पिट जाएगा।" और मैंने कापी दूर फेंक दी।



पास ही मेज़ पर दृष्टि गई, तो वह पुस्तक नज़र पड़ी, जिसको ऐसे अवसरों पर बहुधा उठा लिया करता हूँ। सबसे पहले जिस शब्द पर दृष्टि गई वह था—"हे महाबाहो!"

पृष्ठ पलटा, तो पाया—"हे निष्पाप!" फिर—"हे पार्थ!" और फिर—"हे भरतकुल-श्रेष्ठ!" तब—हे धनञ्जय!"

मुझे रोमाञ्च हो आया। हृदय भर उठा और मस्तक झुक गया, मैं सोचता रहा।

सम्बोधन में उठाने की कितनी भारी शक्ति निहित है।

परिस्थिति पर दृष्टि गई तो यह कि कुप्पा-सा मुँह फुलाए आँखों में पानी भरे, धनुष-बाण एक ओर फेंक-फाँक कर नत-मस्तक अर्जुन, सामने शत्रु सेना, किसी प्रकार समझता नहीं; प्रश्न पर प्रश्न किये चला जा रहा है; जैसे इतनी दूर द्वारका से यहाँ तक सो रहा था, पहिले यह सोच-विचार कहाँ चला गया था, क्या बस इस क्षण पहिली बार इसे दिखाई पड़ा कि शत्रु-सेना में सगे, सम्बन्धी, आदरणीय, गुरु और प्रिय बन्धु होंगे!



'हे मूढ़! हे बहिरात्मा! हे मोही! हे कापुरुष!" उचित ही हैं, किन्तु नहीं—"हे धनञ्जय! हे महाबाहो! हे भरतकुल-श्रेष्ठ!"

मैंने देखा—उम्मी सहमा-सा खड़ा है और दूर पड़ी कापी पर उसकी निगाह जमी हुई है; जैसे वह कोई स्टैच्यू हो!

—श्री महावीर प्रसाद जैन

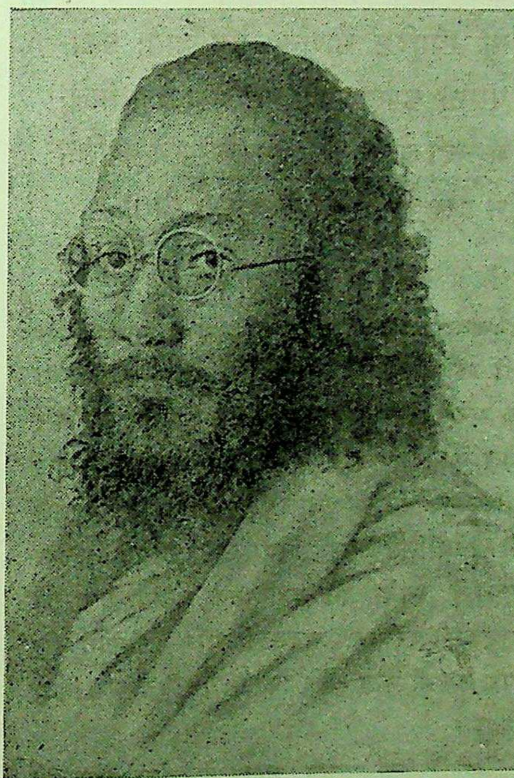
हमारी नेपाल भाषा का साहित्य

श्री चित्तधर 'हृदय'
सभापति नेपाल भाषा साहित्य सम्मेलन

जो भाषा नेपाल की प्रजा-भाषा ही नहीं, देश-भाषा ही नहीं, कभी राष्ट्र भाषा का गौरव-पूर्ण पद भी प्राप्त कर चुकी है, उस भाषा तथा उसके साहित्य के बारे में दो बातें करने का अवसर मिलना सचमुच बड़े ही हर्ष का विषय है।

प्रश्न है हमारी भाषा का आरम्भ कब से हुआ ? इस में साहित्यिक रचना कब से होनी प्रारम्भ हुई। इन प्रश्नों का उत्तर देना सहज नहीं । भाषातत्व पुरातत्वान्वेषकों का विषय है। आज तो हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारा 'नमोवागीश्वराय' ही हमारे साहित्य का भी 'नमोवागीश्वराय' है । जैसे तिब्बत के उत्थान काल में भारतीय पण्डित दीपंकर श्री ज्ञान के तिब्बती भाषा को लिपि-बद्ध करने के लिये, उसके अनुकूल स्वरों तथा व्यञ्जनों की रचना कर, उसी वर्णमाला की सहायता से अनेक शास्त्रों का भाषान्तर कर दिया, उसी प्रकार इसके बहुत पहले ही, गुरु मञ्जुदेव ने काली-हृद का पानी निकाल कर हमारे देश को बसने योग्य बनाया होगा तथा हमारी भाषा को साहित्यिक रूप दिया होगा । अन्यथा यह कभी नहीं होता कि हम प्रत्येक वर्ष वसन्त-पञ्चमी के दिन मञ्जु-श्री पर्वत पर जाकर पूजा करते और अपने साहित्य का क, ख, ग नमोवागीश्वराय से प्रारम्भ करते । यह तो उन महापुरुष का गुण-स्मरण करना तथा सरस्वती को भी नमस्कार करना ही है ।

उसके बाद हमारे पूर्व पुरुषों ने अनेक वर्षों तक विविध विषयों के ग्रन्थ लिखे तथा उपयोगी पुस्तकों के अनुवाद भी किये । उन पुस्तकों की संख्या कर सकना कठिन है। बहुत सी पुस्तकें वीर-पुस्तकालय में हैं। बहुत सी हम सब के घरों में भी पड़ी हैं। उनके विषय साधारणतः हैं—(१) व्याकरण, कोश व छन्द-शास्त्र, (२) राजनीति तथा नीति शास्त्र (३) स्तोत्र तथा गीत, (४) जातकावदान और कथा, (५) वंशावली वा इतिहास, (६) तीर्थ-व्रत-महात्म्य (७) क्रिया-कर्म-काण्ड, (८) धर्म-शास्त्र व पुराण, (९) शिल्प-शास्त्र, (१०) मन्त्र-तन्त्र, (११) चिकित्सा-शास्त्र आदि आदि। इन पुस्तकों में से अनेक चुनी हुई पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद हो चुके हैं तथा कई रोमन अक्षरों में भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

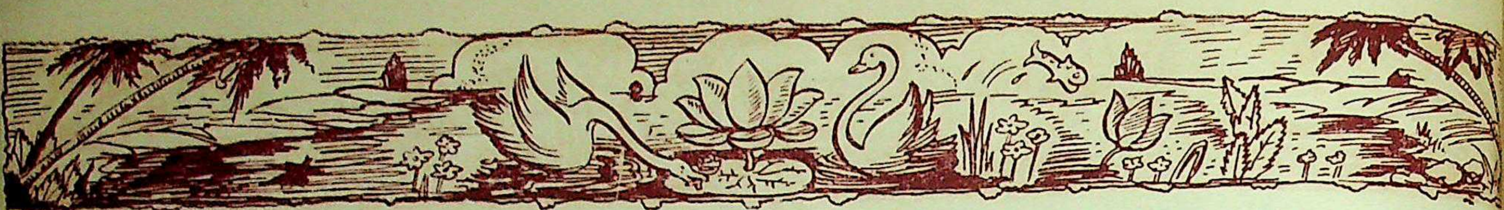


लेखक

१८ वीं शती में ईसाई पादरियों ने भी अपने धर्म के प्रचारार्थ इसी भाषा की शरण ली। 'ग्रंथ-धर्म-प्रकाश' नामक ग्रन्थ उनके इन प्रयत्नों का साक्षी है ।

इस समय रोम के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो. तुचि नेवारी भाषा से प्राचीन-ग्रन्थों तथा शिलालेखों का अनुसंधान कर रहे हैं । अनेक तिब्बती विद्वानों ने हमारे रञ्जना, भुंजियो, कुंमो, गोमो, पाचुमो, क्वेंभो, गुजियो आदि अनेक प्रकार के अक्षरों से तिब्बती-वर्ण माला के अक्षर भी बना लिये हैं।

नेपाली संवत् १००६ में स्वर्गीय साहु हर्षमान ने ल्हासा में रहते समय नेपाली तथा साथ साथ तिब्बती अक्षरों में ताराशत नाम और नामसंगीति को छपवाया था और एक विंशति आर्य-तारा भी। फिर कुंमों अक्षरों और तिब्बती अक्षरों के साथ भद्रचरी का काठ का ब्लाक बनवाकर भी छपवाया था। भद्रचरी में एक जगह नेपाल भाषा से भी एक वाक्य तिब्बती अक्षरों के साथ में लिखा है—'पूजांग बचय थाय इच्छा जुल्सा पुष्पवरे भिचया चोसंतुं थ्वतने।" इन सब अक्षरों का ल्हासा में इतना सम्मान है कि इन अक्षरों को बिना जाने 'चितु' पदवी नहीं मिल सकती। क्योंकि जितने पुराने ग्रंथ हैं वे सब इन्हीं अक्षरों और तिब्बती अक्षरों में



साथ साथ छपे हैं।

विविध अक्षरों और साहित्य से समन्वित नेपाल भाषा काल के चक्र में पड़, लिखने की साहित्यिक भाषा न रह, अवनत हो 'बोली' के गर्त में जा पड़ी। हाँ पृथ्वी नारायण शाह ने जब नेपाल विजय की तो उस ने इसी देश-भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार किया। नेपाली संवत् ८९५ में नेपाल-ल्हासा का जो सन्धि-पत्र लिखा गया, वह इसी भाषा में लिखा गया। आगे चलकर श्री लक्ष्मी सुनंदन, श्री पं० अमृतानन्द, श्री चण्डिकादास आदि कवियों ने अपनी कृतियों से इस भाषा के साहित्य को समृद्ध किया।

इधर वर्तमान 'नेपाली' भाषा भी खसकुरा, गुरखाकुरा, पर्वतिया भाषा, गोरखा-भाषा, गोरखाली भाषा आदि नामों से लिखी पढ़ी जाती रही। जब गोरखा-भाषा राज-भाषा बन कर बलवान बन गई तब १९६२ साल से बाद के लिखे नेपाल-भाषा के कागज़-पत्रों पर भी प्रमाण-स्वरूप अदालत में पेश न कर सकने का प्रतिबन्ध लगा दिया। इस प्रकार हमारी इस भाषा का राजकीय बहिष्कार आरम्भ हुआ।

फिर नेपाल संवत् १०४५-४६ में जब हमारे गुरुवर योगवीर सिंह का 'धर्मसार भाषा' (कविता) प्रकाश में आया तो प्रकाशक श्री भवानीवीर सिंह और गुरुवर पर भी दस दस रुपया जुर्माना किया गया और नियम बना दिया गया कि अब से कोई भी किताब या परचा बिना पहले से अड्डा (सरकारी-दरबार) से पास कराये नहीं छापा जा सकेगा।

नेपाल-भाषा की हर चीज़ कोई न कोई बहाना बनाकर नापास ही कर दी जाती थी। इतना ही नहीं विक्रम १९९० में नेपाल-भाषा में एक दो लेख अथवा कोई छोटी-मोटी पुस्तक लिखने वाले लेखकों को युद्ध शमशेर महाराज ने बुलाकर धमकाया—"नेपाल भाषा में मत लिखो। अगर लिखोगे, तो भीम शमशेर महाराज ने जैसा दण्ड दिया था, वैसा ही दण्ड दिया जायगा।" तब मजबूर होकर नेपाल-भाषा के सभी सेवकों को अपनी अपनी कलम को विश्राम देना पड़ा।

यदि कोई पुस्तक भारत में छपवाकर लायी जाती, तो वह भी सेंसर करने के नाम पर भंसार (कस्टम-हाउस) में रोक ली जाती। १९९७ में जब प्रजा परिषद का आन्दोलन चला,

> जमीन पर सोना पड़े या पलंग पर सोना मिल जाये; शाक-भाजी खानी पड़े या स्वादिष्ट भोजन मिल जाये; फटा-पुराना कपड़ा मिले या दिव्य वस्त्र मिलें; मनस्वी लोग कार्य सफल करने के लिये न दुख को गिनते हैं न सुख को।
>
> —नीति

तो राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के साथ नेपाल-भाषा के अनेक लेखकों को भी कोई न कोईदोष लगाकर जेल में ठूँस दिया गया। नेपाल-भाषा में एक दो पुस्तकें लिखने वाले भिक्षुओं तक को नेपाल से निर्वासित कर दिया गया। इस प्रकार हमारी भाषा को यहां तक दबाया गया कि सरकारी दरबार, अदालतों और टेलीफोन तक पर उस में बात चीत करना निषिद्ध कर दिया गया।

परिणाम-स्वरूप भाषा में बोल-चाल का व्यवहार भी कम होने लगा, परन्तु कोई भी वस्तु दबाने से सदैव दबी नहीं रहती। 'प्रहार करने से रास्ते की धूल भी उड़कर पर आती है' कहावत के अनुसार लाख बा रहने पर भी कुछ नैपाली लेखकों ने लुक- कर नेपाल-भाषा में लिखना-पढ़ना जारी र यह जाति की सजीवता का प्रमाण था।

नेपाल सम्वत् १०२५ तक तो हमारी का एक भी ग्रन्थ मुद्रित नहीं हो सका। लिखने तथा बोलचाल की भाषा में ही रूपता स्थापित हो सकी। एक प्रकार भाषा में पुस्तकें लिखी जातीं, जो बोलचाल भाषा से सर्वथा भिन्न होतीं। पढ़ने वाले अ तरह न पढ़ सकते। इसी बाधा को दूर के लिये स्वर्गीय पण्डित निष्ठानन्द वज्रा ने १०२९ में सर्वप्रथम 'प्रज्ञा पारमिता विंश स्तोत्र' को बोलचाल की भाषा में छपवा निकाला। तदनन्तर 'ललित-विस्तर' जैसे मह ग्रन्थ को भी उन्होंने स्वयं लेखक, कम्पोजि और प्रेस-मैन तक बन, एक छोटे-से हैण्ड- पर मुद्रित कर प्रकाशित किया। 'भद्रचरी ना धारिणी' और 'बोधिचर्य्यावतार' का प्रकाशन हुआ। यही हमारी बोलचाल भाषा का युगारम्भ है। इससे यह प्रमाणि हो गया कि बोलचाल की 'बोली' लिखी जा सकती है।

करीब-करीब इसी समय अंग्रेज़ी शिक्षा प्रचार आरम्भ हुआ। विद्यार्थियों की कठिन को दूर करने के लिये स्व० मास्टर जगत सुं मल्ल ने सबसे पहले अपनी भाषा के द्वारा अंग्रे साहित्य की शिक्षा देनी आरम्भ की। 'इस प कांगुबारवं' नाम से 'इसपस् फेब्लज़' अनुवाद निकाला। इस समय अंग्रेज़ी-डिक्शन आदि कई ग्रन्थ राष्ट्रीय सम्पत्ति से मुद्रित हो की प्रतीक्षा कर रहे हैं।



शाश्वत सुख की भुक्ति बन गए !

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

मेरे बन्धन मुक्ति बन गए !
मुझे मिले जो माटी के कन,
उनमें मुझको झलका सुवरन,
द्वार तुम्हारा पाजाने को मेरे अर्चन, युक्ति बन गए !
मेरे बन्धन मुक्ति बन गए !!
शब्द, स्पर्श, सौन्दर्य, गन्ध, रस
सबमें प्रकटे तुमही बरबस
आज तुम्हारे चिन्तन मुझको शाश्वत सुख की भुक्ति बन गए !
मेरे बन्धन मुक्ति बन गए !!
सप्त सिन्धु-सा मेरा जीवन,
जिसमें कितने खारे जलकन,
एक तुम्हारी स्वाति-बून्द को पाकर मुक्ता-शुक्ति बन गए !
मेरे बन्धन मुक्ति बन गए !!

सन् १६१७ में काजी महावीर सिंह ने काशी से 'उखान वखान को प्रवास' नामक पुस्तक में 'धन्य महाराज चन्द्र शमशेर' नामक एक गीत छपवाया। ने० सं० १०३७ में 'अपरिमिता नामधारिणी' और नेपाल सम्वत् १०३९ में श्री जीवरतन वज्राचार्य्य द्वारा 'दान-गाथा' नेपाल-भाषा में प्रकाशित हुई।

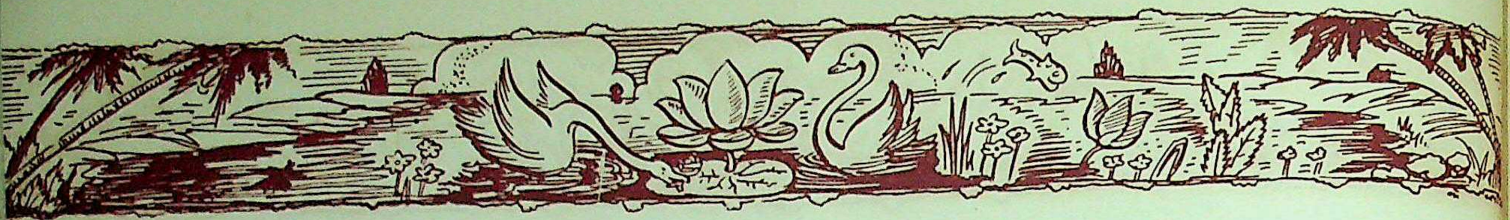
यह सिद्ध करने के लिए कि गद्य की नई बोल-चाल की भाषा में पद्य-रचना भी हो सकती है स्व० कवि सिद्धिदास ने 'सज्जन हृदयाभरण' नामक नीति और स्त्री-शिक्षा के दोहा-चौपाइयों का ग्रन्थ १०४० साल में प्रकाशित किया। उन्हीं की लिखी हुई समाज-शास्त्र, काम-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, छन्द-शास्त्र आदि अनेक विषयों की पचासों पुस्तकें अप्रकाशित पड़ी हैं। उन्हें यथाशीघ्र मुद्रित कराकर सुरक्षित करना चाहिए।

दूसरा युग 'बुद्धधर्म और नेपाल भाषा' पत्रिका का युग है। यह पूज्य धर्मादित्य धर्माचार्य द्वारा सम्पादित तथा स्वर्गीय कवि योगवीरसिंह की सरल, सरस कविताओं से अलंकृत रहती थी। उसी पत्रिका में मास्टर वैकुण्ठप्रसाद जी की भी तीन-चार रचनायें प्रकाशित हुई हैं। उसमें से 'वसन्त' और 'हेत्यंगु स्वांयातः' कविता की नवीन शैली से उस समय के युवकगण अधिक प्रभावित हुए हैं। किसी-किसी ने उसी ढङ्ग पर कविता लिखनी भी आरम्भ की, जिनमें एक मैं भी हूँ श्री योगवीरसिंह को गुरु मानकर श्री वैकुण्ठप्रसाद जी की शैली का अनुयायी। अतः मैंने भी 'पद्य निकुञ्ज' और 'हृदय-कुसुम' नामक दो पुस्तिकायें प्रकाशित कीं। स्थविर धम्मालोक जी ने भी, जो उस समय श्री दशरतन थे, 'लोके कुचालु कुव्यवहार' नामक पुस्तक लिखी और नेपाल संवत् १०५० साल में श्री मंजुहर्ष के नाम से प्रकाशित की। और भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। यदि उन्हें साहित्यिक दृष्टि से विशेष न भी माना जाए तो भी वे भाषा-प्रेम और भाषा-सेवा का तो प्रमाण ही हैं।

इसी समय शहीद श्री शुक्रराज शास्त्री ने 'नेपाल भाषा व्याकरण', 'नेपाल भाषा रीडर' और 'नेपाल-भाषा वर्णमाला' का प्रकाशन किया। सुब्बा तीर्थराज का 'वर्णमाला' भी प्रकाशित हुआ। डा. इन्द्रमान का 'धम्म पद' भी उल्लेखनीय है।

इसी बीच न मालूम कैसे 'गौमयजुया बाखं' और श्री० डेव काजी वज्राचार्य्य का 'स्वयम्भू-दर्शन' सेन्सर आफिस से पास होकर प्रकाशित हो सके। श्री० खड्गलाल जी की खद्दर संबंधी पुस्तक में 'समय अमूल्य खना अति' नामक गीत भी छपा था। वह भी 'सेंसर' से पास होकर छप सका था। इसी प्रकार ने० सम्वत् १०५७ में भिक्षु महाप्रज्ञा रचित 'स्वचित्त शुद्धि मार्ग' धार्मिक काव्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है।

इसी जमाने में श्री० फतहबहादुर जी ने 'बुद्ध धर्म' पत्रिका में प्रकाशित कुछ पुराने गीतों के साथ कविवर सिद्धिचरण, श्री० रत्नभान, तथा श्री० प्र० वा० नेवा की भी कविताओं को सम्मिलित कर 'नेपाली विहार' नाम से एक काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में एक विस्तृत भूमिका भी है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन क्या था, अधिकारी जगत में एक खलबली मच गई। प्रजापरिषद् के सदस्यों के साथ श्री० फतह-



हादुर, श्री० सिद्धिचरण और मुझे भी पकड़ र जेल में डाल दिया गया।

अनिच्छा से ही सही, जब भावुक-हृदय को कान्त वातावरण में रहना पड़ा तो उसके लिये ल्पना-लोक में विचरना स्वाभाविक था। ागज कलम न मिलता तो स्लेट पर ही टिका घिसते। हमारे साथ श्री० केदारनाथ व्यथित' जी, श्री० हरिकृष्ण जी और भाई र्म-रत्न 'यमि' (भू० उपमन्त्री) ने भी कविता लखनी आरम्भ की। और क्या चाहिये था? ाहर जो कार्य न हो सकता था, वह भीतर ोने लगा।

इधर अनेक भिक्षु भी भारत पहुंचकर ार्मिक-साहित्य प्रकाशित करते रहे। उसी में क पुस्तक 'ज्ञान-माला' है, जिसके भजन गाने ालों को एक वर्ष से भी अधिक बहुत कष्ट उठाना पड़ा। पुस्तक-विक्रेता श्री० मनम बहादुर ी तो दूकान ही नहीं खुलने दी गई। उन्हें वशेष कष्ट उठाना पड़ा।

इसी समय पाटन से एक वर्ष तक 'नेपाल' ाम का एक हस्त-लिखित संग्रह प्रकाशित होता हा और सारनाथ (बनारस) से निकलने ाले हिन्दी 'धर्म-दूत' में भी नेपाली भाषा के क-दो लेख प्रकाशित होते रहे। यह क्रम एक कार से उस समय की एकमात्र नेपाल-भाषा ी पत्रिका 'धर्मोदय' का प्रकाशन आरम्भ होने क जारी रहा। नेपाल-भाषा का इतिहासकार हाबोधी सभा के इस उपकार को नहीं भूलेगा।

२००२ साल की भाद्र शुक्ला पूर्णिमा को म लोग जेल से बाहर दो-दो तीन-तीन किताबें कर निकले। कुछ समय यूँ ही बीत गया। काशित होने की कोई आशा न होने पर भी लखने वाले लिखते रहे।

२००३ साल के वैशाख की पञ्चमी को लङ्का से नारद स्थविर आदि विद्वानों की शिष्ट-मण्डली नेपाल पहुंची। आनन्द-कुटी में लङ्का-चैत्य बना। निर्वासित भिक्षुओं को वापिस नेपाल बुलाने की बात के साथ नेपाल-भाषा को भी कुछ सुविधा देने की बात हुई। आगे चलकर कस्टम-आफिस, सेंसर-आफिस तथा पोस्ट-आफिस में रुकी पड़ीं भिक्षुओं की पुस्तकें भी वापिस मिलीं। उसी साल नेपाल-भाषा के साहित्य को भी 'पास' करने के लिये एक नया विभाग ही खोल दिया गया। अन्धे को क्या चाहिये था? दो आंखें! लुक-छिपकर भारत से छपवा-छपवा कर लाने वाले उत्साही लेखकों को अवसर मिला तो उन्होंने नेपाल में ही 'पास' कराकर अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। इनमें जो ग्रन्थ सबसे पहले 'पास' हुआ उसके लेखक हैं प्रसिद्ध समालोचक श्री रत्न ध्वज जी। ग्रन्थ का नाम है 'नारद-मोह'। इस प्रकार कोई ११५ पुस्तकें 'पास' होकर प्रकाशित हुईं। इस समय और भी उत्तमोत्तम पुस्तकें छप रही हैं।

भाषा के उच्चारण की ओर भी हमारे भाइयों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। 'धर्मोदय-सभा' की स्थापना के बाद से पिछले छः वर्ष से 'धर्मोदय' पत्रिका नियम-पूर्वक प्रकाशित होती रही है, सभा की ओर से बीस से अधिक पुस्तकें भी छप चुकी हैं।

इधर भाषा और साहित्य की सेवा के लिये 'नेवा युवक गुथी', 'सायमि बन्धु' तथा 'साहित्य सेवा खलः' आदि अनेक संस्थायें हैं। 'च्वसा-पासा' के तत्त्वावधान में तो यह सम्मेलन हो ही रहा है। 'पासा' नामक पाक्षिक-पत्र प्रकाशित हो ही रहा है, तथा अनेक पुस्तकें भी। फिर आज-कल का नेतृत्व करने के लिये 'थौं कन्हें' (आज-कल) नामक पत्रिका ने भी जन्म ग्रहण किया है। ये सब हमारी भाषा की सजीवता के लक्षण हैं। इनके अतिरिक्त नेपाल-भाषा-परिषद् की स्थापना होकर नेपाल-साहित्य और संस्कृति का प्रतीक 'नेपाल' निकलना आरम्भ हुआ है। इसी परिषद् की प्रेरणा से नेपाल राष्ट्रीय विद्यापीठ वीर-गंज ने न केवल हमारी भाषा को पाठ्य-क्रम में स्थान दिया, बल्कि उसी को माध्यम रूप में भी स्वीकार किया। उसने नेपाल-भाषा में प्रौढ़-प्रबन्ध (थीसस) लिखकर विद्यालंकार जैसी ऊँची उपाधि प्राप्त कर सकने की भी सुविधा प्रदान की है।

ने० सं० १०७३ की पञ्चमी के दिन अभी अभी उक्त विद्यापीठ का उपाधि-वितरणोत्सव हुआ था। उसमें ४ सज्जनों ने साहित्य-रत्न की उपाधि प्राप्त की।

हम सभी की कामना के अनुकूल नेपाल भाषा परिषद के अध्यक्ष हेडमास्टर लोकमान सिंह द्वारा बनाया गया एस० एल० सी० परीक्षा का पाठ्य-क्रम भी नेपाल सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत हुआ है। २०११ वि० साल से परीक्षा ली जायगी।

अब हमारी मातृभाषा और नहीं सोयेगी। अपनी संतान को जगाकर वह स्वयं उठ चुकी है। अब इसे प्रजातन्त्रात्मक ढंग से समाना-धिकार पूर्वक, विचार स्वातन्त्र्य के वातावरण में ले जाना हमारा काम है।

मैं आज दिन इस अवसर पर आप सब का आवाहन करता हूं—अपनी मातृभाषा की उत्तरोत्तर सेवा करने के लिये, स्कूलों में ही नहीं कालेजों में भी योग्य स्थान दिलवाने के लिये, नयी योजना के अनुसार बनने वाले विश्व विद्यालय के पाठ्य-क्रम में भी प्रमुख भाषाओं की पंक्ति में बैठाने के लिये, आवश्यक और उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित कराने के लिये और नेपाल सरकार के शिक्षा-विभाग द्वारा होने वाले अनेक प्रकार के खर्चों में अपनी मातृभाषा की समृद्धि के निमित्त भी योग्य खर्च कराने के लिये।

जय-मातृ भाषा- जय नेपाल।

